मुस्लिम पर्सनल ला
और
समान सिविल कोड

शम्स पीरज़ादा

अनुवाद :

डा० कौसर यज़दानी

विषय सूची

आमुख

मुस्लिम पर्सनल ला की समस्या जिस उग्रता के साथ उभर कर सामने आ गयी है और उसने तड़प और बेचैनी की जो स्थिति मुसलमानों के भीतर पैदा कर दी है, उसे देख कर वे लोग जो 'नवीनता' और नयी सभ्यता के रसिया हैं, यह विचार करने लगते हैं कि इस समस्या को अनावश्यक महत्व दिया जा रहा है और उनकी बेचैनी महसूस करना सही नहीं है, बल्कि उनकी बेचैनी का कारण मात्र उनकी रूढ़िवादिता और अपने धर्म से ज़रूरत से ज़्यादा लगाव है। वे समझते हैं कि जीवन के सामाजिक अंग को भी वैसे ही धर्म से अलग होना चाहिए जैसे कि राजनीति और अर्थ आदि के विभागों को स्वतंत्र कर दिया गया है। जिस सेक्युलरिज़्म की धाक राजनीतिक और आर्थिक जगत में बिठाई गई है उसे 'घर' में भी बिठाई जानी चाहिए। इस विचार के लोग इस्लाम को भी अन्य धर्मों की पंक्ति में ला खड़ा करते हैं और उसकी यह हैसियत कि वह अल्लाह का अवतरित धर्म है और एक पूर्ण जीवन-व्यवस्था की हैसियत रखता है, उनकी बुद्धि में नहीं समा सकी है। उनके नज़दीक इस्लाम के सामाजिक क़ानूनों में , अगर अल्लाह के उतारे हुए हों भी तो उस में संशोधन का अधिकार मनुष्य को बहरहाल होना चाहिए। फिर ऐसे लोगों की तायदाद भी कुछ कम नहीं है जो मुस्लिम पर्सनल ला के बारे में कोई ज्ञान नहीं रखते और ऐसे ही कुछ लोग मुस्लिम पर्सनल ला के समर्थन में मुसलमानों के आवाज़ उठाने और उस में हस्तक्षेप की कोशिशों के विरुद्ध प्रदर्शन को अकारण का हंगामा कहने लगते हैं। उनके नज़दीक मुस्लिम पर्सनल ला का अर्थ केवल एक से अधिक विवाह करने की आज़ादी का क़ानून है। वे कहते हैं कि एक

पत्नी की मौजूदगी में दूसरा विवाह करने की इजाज़त इस्लाम ने अद्ल (न्याय) की शर्त के साथ दी है और यह मात्र इजाज़त है न कि हुक्म, इसलिए अगर एक से अधिक विवाह पर पाबंदी का क़ानून बनाया जाता है तो इससे शरीअत पर कौन सा आक्षेप होता है ? उनके नज़दीक मुस्लिम पर्सनल ला को ख़त्म करने और समान सिविल कोड को लागू करने से कोई कठिनाई नहीं पैदा होती, क्योंकि उनके विचार में यह परिवर्तन शादी-ब्याह के सीमित मामलों की हद तक होगी। इन लोगों को न मुस्लिम पर्सनल ला के क्षेत्र का सही अन्दाज़ा है और न समान सिविल कोड के क्षेत्र का। वे न मुस्लिम पर्सनल ला के धार्मिक महत्व को समझ सके हैं, वरन् इस बात का उन्हें अंदाज़ा है कि समान सिविल कोड के नतीजे में इस्लामी शरीअत के कौन-कौन से क़ानून और नियम संशोधन के शिकार बनेंगे। इस लिए ज़रूरी मालूम होता है कि मुस्लिम पर्सनल ला और उसके महत्व को स्पष्ट किया जाए और समान सिविल कोड के समर्थकों की दलीलों का अवलोकन किया जाए तथा स्पष्ट किया जाए कि अगर समान सिविल कोड को तैयार करने और लागू करने की नौबत आ गई तो उसकी रूप-रेखा क्या होगी ? और वह मुसलमानों के लिए कैसी-कैसी समस्याओं और परेशानियों का कारण बनेगा। इस लिए उनकी चिन्ता और बेचैनी ग़लत नहीं है बल्कि जिस धर्म के वे पोषक हैं, उस पर ईमान रखने का स्वाभाविक तक़ाज़ा है।

मुस्लिम पर्सनल ला क्या है ?

भारत में मुस्लिम पर्सनल ला का इतिहास संक्षेप में इस प्रकार है : मुग़ल शासन-काल में इस्लाम का क़ानून देश का क़ानून (Law of the Land) था अर्थात् सिविल क़ानून ही नहीं बल्कि फ़ौजदारी क़ानून (Criminal Law) भी इस्लाम ही का चल रहा था और उसी के अनुसार अदालतों की व्यवस्था गतिमान थी, हां ग़ैर-मुस्लिमों को शादी-विवाह, विरासत और जायदाद आदि के विषय में उनके अपने धार्मिक और परम्परागत क़ानून पर चलने की पूरी स्वतंत्रता थी, अर्थात् उनके लिए उनका अपना पर्सनल ला था और मुसलमानों के लिए उनका अपना पर्सनल ला।

सन १७६५ ई० में जब ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अदालतों का पुनर्गठन किया तो अंग्रेज़ जज विधिशास्त्रियों की सहायता से इस्लामी क़ानून के अनुसार ही फ़ैसले करते रहे। बाद में धीरे-धीरे अंग्रेज़ी क़ानून लागू होता चला गया, यहां तक कि सन् १८६२ ई० में इस्लाम के फ़ौजदारी क़ानून (Criminal Law) को समाप्त करके इण्डियन पेनल कोड (Indian Penal Code) को, जो आज भी इसी नाम से चलायमान है– लागू कर दिया गया और निकाह, तलाक़ और विरासत, हिबा आदि पारिवारिक व व्यक्तिगत विषयों की हद तक इस्लामी क़ानून को बाक़ी रहने दिया गया[१] पर ग़ैर-इस्लामी संस्कृति के प्रभावाधीन मुसलमानों की कुछ बिरादरियों में परम्पराओं ने इस्लामी क़ानून की जगह ले ली थी, जैसे औरतों को विरासत में हिस्सा नहीं दिया जाता था, इसलिए उलेमाओं और आम

१. देखिए, *Chamber's Encyclopeadia,* Vol IX, p. 468.

मुसलमानों के मांग करने पर अंग्रेज़ों के शासन-काल में सन् १९३७ ई० में मुस्लिम पर्सनल ला (Muslim Personal Law (Shariat) Application Act 1937) को लागू किया गया।

मुस्लिम पर्सनल ला में, जिसका दूसरा नाम शरीअत एक्ट १९३७ है, कहा गया है कि शादी-ब्याह, महर, नान-नफ़्क़ा, तलाक़, फ़स्खे निकाह, विलायत, हिबा, विरासत और औक़ाफ़ के सम्बन्ध में जहां दोनों पक्ष मुसलमान हों, फ़ैसले का क़ानून (Rule of Decision) मुस्लिम पर्सनल ला (शरीअत) होगा।

इसके बाद सन् १९३९ ई० में मुसलमानों के निकाह के फ़स्ख़ का क़ानून (Dissolution of Muslim Marriages Act 1939) लागू हुआ जिसमें उन कारणों का निर्धारण हुआ जिनके आधार पर एक मुसलमान औरत अपने पति से छुटकारा प्राप्त करने के लिए अदालत का दरवाज़ा खटखटा सकती है। जैसे अगर पति चार साल से लापता है या दो साल से नान-नफ़्क़ा नहीं अदा करता या अन्याय व अत्याचार का बर्ताव करता है या एक से अधिक पत्नियों की स्थिति में उनके मध्य क़ुरआन के आदेशानुसार अद्ल (न्याय) नहीं करता या वी.डी. रोगों का शिकार है तो उसके आधार पर वह अदालत से सम्बन्ध विच्छेद का आदेश (Decree) प्राप्त कर सकती है।

इससे स्पष्ट है कि मुस्लिम पर्सनल ला का सम्बन्ध निकाह, तलाक़, ख़ुला और विरासत आदि शरई हुक्मों से है, और उसका क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसमें इस्लाम का केवल निकाह व तलाक़ का विधान ही नहीं आता, बल्कि पूरी विरासती व्यवस्था भी आती है। इन विषयों के सम्बन्ध में जो मामला भी निज़ायी क़रार पायेगा, अदालत उसका फ़ैसला शरई क़ानून के अनुसार करने को पाबंद है। जैसे अगर कोई औरत, मर्द के ज़ुल्म से तंग आ गई है और मर्द ख़ुलअ के लिए तैयार नहीं होता तो औरत अदालत के ज़रिए अपना यह हक़ हासिल कर

सकती है।

यद्यपि मुस्लिम पर्सनल ला का Codification नहीं किया गया है, लेकिन चूंकि सैद्धान्तिक रूप से शरीअत को फ़ैसले का मेयार मान लिया गया है, इसलिए इस्लामी फ़िक़्ह (धर्मशास्त्र) को क़ानून का दर्जा हासिल है और अदालत की आसानी के लिए अंग्रेज़ी में मुहम्मडन ला पर अनेकों पुस्तकें प्रकाशित हो गयी हैं जैसे मुल्ला की 'Principles of Muhammadan Law' और ए० ए० फ़ैज़ी की 'Outlines of Muhammadan Law' बहुत प्रसिद्ध हैं। हनफ़ी फ़िक़्ह की प्रसिद्ध और प्रमाणित पुस्तकें 'हिदाया' का भी अंग्रेज़ी में अनुवाद प्रकाशित हो गया है, जिसका हवाला पेश करके वकील अदालतों से फ़ैसला तलब करते हैं और अदालत को इस्लामी क़ानून के अनुसार फ़ैसला करना पड़ता है। यह वस्तुस्थिति स्वतंत्रता के बाद भी बाक़ी रही और अल्लाह के फ़ज़्ल से अब तक बाक़ी है। यह और बात है कि इसके अंगों-प्रत्यंगों में इस्लामी क़ानूनों का ध्येय वर्तमान अदालतों द्वारा ठीक तौर से पूरा न हो रहा हो और वर्तमान परिस्थितियों में इसकी आशा भी नहीं की जा सकती।

मुस्लिम पर्सनल ला का महत्व

निकाह, तलाक़, ख़ुला और विरासत जैसे मामले ऐसे नहीं हैं कि उनके बारे में कोई सा तरीक़ा अपनाने और अपनी इच्छाओं के अनुसार क़ानून बनाने की इस्लाम स्वतंत्रता देता हो, बल्कि उनमें से हर मामले में कुरआन के स्पष्ट आदेश मौजूद हैं और इन आदेशों का उल्लेख करने के बाद उनको पालन करने की बड़ी ताकीद की गई है और उसके विरूद्ध चलने पर भारी धमकी सुनाई गई है, जैसे निकाह के हुक्मों को बयान करने के बाद कुरआन मजीद में कहा गया है :–

'यह अल्लाह का क़ानून है जिसका पालन तुम पर अनिवार्य है।'

–निसा : २८

तलाक़ और ख़ुला के आदेशों का उल्लेख करने के बाद कहा गया है :–

'ये अल्लाह की मर्यादायें हैं, इनका उल्लंघन न करो और जो लोग अल्लाह की मर्यादाओं का उल्लंघन करें वही अन्यायी हैं।'

–बक़र: २२९

विरासत का क़ानून बयान करते हुए फ़र्माया : –

'यह अल्लाह की ओर से अनिवार्य की हुई बात है।' –निसा : ११

और विरासत-व्यवस्था का उल्लेख जिस आयत पर समाप्त होता है, वह है : –

'और जो अल्लाह और उसके रसूल की अवज्ञा करेगा और उसकी मर्यादाओं का उल्लंघन करेगा, उसको अल्लाह आग में दाख़िल करेगा जहां वह सदैव रहेगा और उसके लिए अपमानजनक अज़ाब (यातना) होगा।'

–निसा : १४

क़ुरआन मजीद में जिन सामाजिक आदेशों का उल्लेख किया गया है उनकी व्याख्या नबी (सल्ल०) ने की है जो सुन्नत कहलाती है और धर्मशास्त्रियों ने किताब (क़ुरआन) व सुन्नत के प्रकाश में इज्तिहाद किए हैं और इस्लामी फ़िक़्ह को संग्रहीत किया है।

किताब व सुन्नत के आदेश जो सामाजिक और पारिवारिक जीवन से सम्बन्ध रखते हैं, इस्लामी शरीअत का महत्वपूर्ण एवं अटूट भाग हैं और उनकी हैसियत अल्लाह के क़ानून और उसके आदेश की है। शरीअत के पूर्ण पालन का आदेश क़ुरआन मजीद में दिया गया है :–

'हे ईमान लाने वालो, इस्लाम में पूरे-पूरे दाख़िल हो जाओ।'

—बक़र: : २०८

'तुम्हारे पालनहार की ओर से जो कुछ तुम्हारी ओर उतारा गया है उसका पालन करो और उसको छोड़कर दूसरे ख़ुदाओं का अनुगमन न करो।' —आराफ़ : ३

'(हे पैग़म्बर) ! तुम अल्लाह के उतारे हुए क़ानून के अनुसार उनके मामलों का फ़ैसला करो और उनकी इच्छाओं का पालन न करो। होशियार रहो कि लोग तुमको आज़माइश में डाल कर कुछ उन आदेशों से फेरने न पायें जो अल्लाह ने तुम्हारी ओर अवतरित किए हैं।' —माइदा : ४९

किसी मुसलमान को यह अधिकार नहीं है कि अल्लाह के आदेशों और क़ानूनों की मौजूदगी में वह अपनी पसन्द का कोई क़ानून बनाये या अपनी पसन्द के रास्ते पर चले :

'किसी मोमिन (ईमान वाले) मर्द और किसी मोमिन औरत को अल्लाह और उसके रसूल के फ़ैसला कर देने के बाद अपने-अपने मामले में कोई अधिकार बाक़ी नहीं रहता।' —अहज़ाब : ३६

जो लोग अल्लाह के क़ानून के मुताबिक़ फ़ैसला नहीं करते, उन्हें काफ़िर (इस्लाम का इन्कारी), ज़ालिम और फ़ासिक (अवज्ञाकारी) कहा गया है। इसी तरह धर्म के एक अंश को लेने और दूसरे को छोड़ देने

के बारे में कड़ी चेतावनी दी गई है।

'फिर क्या तुम ईश-ग्रन्थ के एक अंश पर ईमान लाते हो और दूसरे से इन्कार करते हो।'

—बक़रः : ८५

सूरः निसा में सामाजिक आदेश विस्तार से उल्लिखित हैं और इसी सूरः में नबी सल्ल० को सम्बोधित करके साफ़ तौर से कहा गया है :

'(हे पैग़म्बर !) तुम्हारे पालनहार की क़सम, वे मोमिन नहीं हो सकते जब तक कि ऐसा न हो कि ये अपने आपसी झगड़ों में तुम्हें 'हकम' (पंच) मान लें। फिर तुम जो फ़ैसला करो उसपर अपने मन में भी कोई तंगी न महसूस करें, बल्कि तुम्हारा फ़ैसला पूरी तरह मान लें।'

—निसा : ६५

मुस्लिम पर्सनल ला के विरोधी कहते हैं कि मुस्लिम पर्सनल ला का शरीअत का भाग होना उसे समाप्त करने में बाधक नहीं होना चाहिए क्योंकि इससे पहले इस्लाम के क्रिमिनल ला (Criminal Law) को भी शरीअत का भाग होने के बावजूद समाप्त किया जा चुका है और इस समय देश में ग़ैर-इस्लामी क्रिमिनल ला लागू है। यह तर्क भी विचित्र है। अगर किसी व्यक्ति को गन्दी हवा में सांस लेना पड़े तो इसका अर्थ यह कहां हुआ कि जो स्वच्छ हवा मिल रही हो वह भी बन्द कर दी जाए और केवल गन्दी हवा का प्रबन्ध किया जाय ? इस्लाम का कोई क़ानून, भले ही वह क्रिमिनल हो या सामाजिक या किसी और प्रकार का, अपने स्थान पर पूरा महत्व रखता है और समान रूप से आदर व सम्मान का अधिकारी है, शरीअत के किसी भी क़ानून को समाप्त करने का प्रश्न एक मुसलमान के मन में हो ही नहीं सकता। पर अगर परिस्थितियों ने इस्लाम के क्रिमिनल ला के बजाय कोई दूसरा क़ानून उनपर थोप दिया हो तो यह वस्तुस्थिति इस बात का तर्क नहीं बन सकती कि इस्लाम के क़ानून का जितना हिस्सा बाक़ी रह गया है, उसको भी त्याग दिया जाए, फिर जो अन्तर क्रिमिनल ला और

सामाजिक ला के मध्य पाया जाता है, उसको ये लोग बिल्कुल दृष्टि से ओझल कर देते हैं । क्रिमिनल ला का सम्बन्ध मूलतः राज्य से होता है, जैसे चोर को, ज़ानी (ज़िना करने वाले) को दण्ड सरकार ही दे सकती है, व्यक्ति नहीं दे सकते। पर सामाजिक क़ानूनों पर व्यक्तियों को अपने तौर से अमल करना होता है और सरकार से उसका सम्बन्ध गौण रूप में होता है। अर्थात् मुक़दमों के फ़ैसलों आदि के पहलू से। इसके अतिरिक्त इस्लाम के सामाजिक क़ानूनों को समाप्त करने की स्थिति में व्यक्तियों की अपने नैतिक स्वरूप के प्रभावित हो जाने की संभावना पैदा हो जाती है, उदाहरण के तौर पर अगर किसी व्यक्ति ने अपनी पत्नी को तलाक़ दे ही दी, जबकि क़ानून की दृष्टि में तलाक़ निषिद्ध हो चुकी हो तो वह पत्नी धर्म की दृष्टि से उस व्यक्ति की नहीं रहेगी पर क़ानून की मजबूरी से वह उसकी पत्नी बनी रहेगी। स्पष्ट है कि इससे औरत और मर्द दोनों का नैतिक स्वरूप प्रभावित होगा। इसके विपरीत क्रिमिनल ला का सम्बन्ध कुछ अपराधियों को सज़ा देने से होता है, इसलिए इस्लाम के क्रिमिनल ला को न लागू होने को मुस्लिम पर्सनल ला की समाप्ति की दलील नहीं बनाया जा सकता।

भारतीय संविधान की धारा ४४

मुस्लिम पर्सनल ला में तबदीली के लिए देश में जो अभियान सा छेड़ दिया गया है, उसका उद्देश्य वास्तव में मुस्लिम पर्सनल ला को पूरी तरह ख़त्म करना और उसकी जगह एक ऐसे सिविल कोड को लागू करने के लिए वातावरण बनाना है जो तमाम सम्प्रदायों के लिए समान हो, जिसमें मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम का कोई अन्तर न हो और इस्लाम का या किसी और धर्म का कोई पारिवारिक क़ानून बाक़ी न रहे। इस अभियान का आधार तो वास्तव में पश्चिमी सभ्यता और जीवन का भौतिकवादी दृष्टिकोण है, पर भारतीय संविधान की धारा ४४ ने, जो नीति-निर्देशक तत्वों में से है, उसके लिए आधार जुटा दिया है।

धारा ४४ में कहा गया है कि :—

"The state shall endeavour to secure for citizens a Uniform Civil Code throughout the territory of India."

"राज्य का प्रयत्न होगा कि पूरे देश में नागरिकों के लिए समान सिविल कोड हो।"

पर संविधान की यह धारा दूसरे नीति निर्दाशक तत्वों की तरह राज्य के लिए एक नीति निर्देशक तत्व की हैसियत रखती है और इस पर संविधान के मौलिक अधिकारों (Fundamental Rights) को बहरहाल श्रेष्ठता प्राप्त है, जिसमें कहा गया है कि :—

'तमाम लोगों को समान रूप से अन्तरात्मा की स्वतंत्रता होगी और धर्म को स्वतंत्रता पूर्वक अपनाने, उसपर अमल करने और उसका प्रचार करने का भी अधिकार प्राप्त होगा।' (धारा २५)

धार्मिक स्वतंत्रता की इस धारा की दृष्टि से किसी ऐसे सिविल कोड के लिए गुंजाइश नहीं होनी चाहिए जिससे किसी सम्प्रदाय की धार्मिक स्वतंत्रता समाप्त हो जाती हो और उसे उसकी धार्मिक शिक्षाओं के विरुद्ध अमल करने के लिए विवश कर दिया जाए। अगर ऐसा किया गया तो यह धर्म में खुला हुआ हस्तक्षेप होगा और उसके बाद संविधान की इस गारंटी का कि लोगों को अपने धर्म पर चलने की स्वतंत्रता होगी, क्या अर्थ रह जायेगा ? आश्चर्य है कि संविधान की इतनी महत्वपूर्ण धारा को छोड़कर धारा ४४ ही को सब कुछ समझ लिया जाता है।

जहां तक नीति निर्देशक तत्वों (Directive Principles) का सम्बन्ध है, शराबबन्दी लागू करना भी नीति निर्देशक तत्वों में शमिल है और उसके लागू करने में कोई धर्म बाधा नहीं डालता, लेकिन इसके बावजूद कितने ही राज्य ऐसे हैं जहां अब तक इसे लागू नहीं किया जा सका और जिन राज्यों में उसे लागू किया गया उन राज्यों से भी धीरे-धीरे उसे विदाई मिल रही है। जैसे केरल में शराबबन्दी उठाई जा चुकी है और महाराष्ट्र में पहले तो शराबबन्दी के क़ानून को बहुत कुछ नष्ट कर दिया गया और अब सरकार उसे बिल्कुल ख़त्म करना चाहती है। आख़िर यह कौन सा न्याय है कि संविधान के एक नीति निर्देशक तत्व से बचने के लिए तमाम उपाय अपनाये जायें और दूसरे नीति निर्देशक तत्व को जिसमें बड़ी हद तक मतभेद पाया जाता है और जिससे धर्म में खुला हस्तक्षेप हो रहा है, लागू करने पर आग्रह किया जाये।

बहरहाल जब तक संविधान की धारा ४४ शेष है, समान सिविल कोड का अभियान ज़ोर पकड़ता रहेगा और मुस्लिम पर्सनल ला के लिए बराबर ख़तरा बना रहेगा, भले ही सरकार के ज़िम्मेदार मुस्लिम पर्सनल ला में परिवर्तन न करने का कितना ही विश्वास दिलाएं और कितने ही वायदे करते रहें, क्योंकि सरकारी ज़िम्मेदारों के वायदों का हाल मालूम है।

और ये वायदे इसलिए भी काफ़ी नहीं हैं कि ज़िम्मेदारी के पद पर आसीन होने वाले व्यक्ति लोकतंत्र में बदलते रहते हैं और सरकारें भी बदलती रहती हैं, इसलिए इसकी क्या गारण्टी कि सरकार के ज़िम्मेदार आज जो वायदा कर रहे हैं, उसे कल उनके उत्तराधिकारी भी करेंगे? इसलिए इस बात की बड़ी ज़रूरत है कि संविधान की यह धारा या तो निकाल दी जाये या इसमें ऐसा संशोधन किया जाये कि मुस्लिम पर्सनल ला की सुरक्षा की पूरी गारंटी मिल जाय।

संविधान बनाने वाली सभा में जिस समय संविधान की धारा ४४ पर विचार हो रहा था, उस समय मुस्लिम संसद सदस्यों ने उसमें अनेक संशोधन प्रस्तावित किए थे। श्री मुहम्मद इस्माईल (मद्रास) ने निम्न संशोधन प्रस्तावित किया था :

Provided that any group, section or community of people shall not be obliged to give up its own Personal Law, in case it has such a law. (*Directive Principles in the Indian Constitution* by K.C. Herkandan, p. 193)

'पर जनता के किसी समूह, भाग या सम्प्रदाय को इस बात के लिए मजबूर नहीं किया जायेगा कि वह अपने पर्सनल ला को छोड़ दे, अगर वह ऐसा कोई क़ानून रखता हो।'

दूसरा संशोधन श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने प्रस्तावित किया था, जो इस प्रकार था :

Provided that the Personal Law of any community which has been guaranteed by the State shall not be changed except with the previous approval of the community ascertained in such manner as the Union Legislature may determine by Law. (do, p. 193)

'पर किसी सम्प्रदाय के पर्सनल ला को जिसकी राज्य ने ज़मानत दी है, बदला नहीं जायेगा, मगर यह कि उस सम्प्रदाय से/पहले ही मंज़ूरी ले ली गई हो उस तरीक़े से जो केन्द्रीय विधायिका ने क़ानून

द्वारा उसके लिए तय किया हो।'

उन्होंने इस संशोधन को प्रस्तावित करते हुए सचेत किया था कि यह धारा ४४ धार्मिक स्वतंत्रता वाली धारा से टकरा रही है और जो ज़मानत उसमें दी गई है, उसे शायद यह धारा ४४ समाप्त कर देगी।

तीसरा संशोधन श्री महबूब अली बेग बहादुर (मद्रास) ने प्रस्तावित किया था, जिस के शब्द इस प्रकार थे :

Provided that nothing in this Article shall affect the Personal Law of the citizens. (do, p. 193)

'पर यह धारा नागरिकों के पर्सनल ला को प्रभावित नहीं करेगी।'

चौथा संशोधन श्री बी. पोकर बहादुर (मद्रास) ने प्रस्तावित किया था जो श्री मुहम्मद इस्माईल के संशोधन जैसा ही था।

इन संशोधनों पर उस समय सभा में गर्मागर्म बहसें हुई थीं जिनमें के. एम.मुन्शी, एम. आर. मसानी, ए. के. अय्यर आदि ने मुख्य रूप से भाग लिया था। के. एम. मुन्शी ने तो यहां तक कहा था कि :–

'It was the desire of the framers of the Constitution to divorce religion from Personal Law. (do, p. 195)

'इस संविधान के निर्माताओं की यह इच्छा रही है कि धर्म को पर्सनल ला से तलाक़ दिलवाई जाये।'

उन्होंने अपने भाषण में तुर्की और मिस्र के सुधारों को भी प्रस्तुत किया था, पर डा० अम्बेडकर ने मुसलमानों को विश्वास दिलाया था कि समान सिविल कोड उनपर ज़बरदस्ती थोपा नहीं जायेगा।

उन्होंने कहा था कि आगे संसद का यह काम है कि वह ऐसा क़ानून बनाये कि समान सिविल कोड केवल उन लोगों पर लागू होगा जो यह एलान करेंगे कि वे अपनी ख़ुशी से यह पाबन्दी स्वीकार करना चाहते हैं। डा० अम्बेडकर के इस विश्वास दिलाने के बाद उपर्युक्त तमाम संशोधन रद्द कर दिए गये थे और क़ानून का वह मसविदा मंज़ूर कर

लिया गया जो वर्तमान संविधान में धारा ४४ की शक्ल में मौजूद है।

श्री मुहम्मद इस्माईल (मद्रास) ने मुस्लिम पर्सनल ला को सुरक्षा के लिए संविधान के मौलिक अधिकारों की धाराओं में भी निम्न बातें बढ़ानी चाही थीं–

To follow the Personal Law of the groups or community to which he belongs or professes to belong.

(Constituent Assembly Debates, Vol. VII, p. 721)

'(उसको इस बात की भी स्वतंत्रता होगी कि) वह जिस वर्ग या सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखता है उसके पर्सनल ला पर अमल करे।)'

पर संविधान बनाने वाली सभा ने इसे भी मंज़ूर नहीं किया और अब हमें वही ख़तरा आ पड़ा है जिसे संविधान बनाते समय ही महसूस कर लिया गया था। रहा डा० अम्बेडकर का विश्वास दिलाना तो शायद सत्तारूढ़ वर्ग को वह याद भी न रहा हो, उसे कोई महत्व देना तो बाद की बात है। इसलिए अब ज़रूरत और अधिक विश्वास दिलाने की नहीं, बल्कि इस बात की है कि संविधान में संशोधन करके स्पष्ट शब्दों में मुसलमानों को यह ज़मानत दी जाए कि उनको अपने पर्सनल ला पर अमल करने की पूरी स्वतंत्रता होगी। जब तक संविधान में इस प्रकार का संशोधन नहीं कराया जाता समान सिविल कोड की तलवार मुस्लिम पर्सनल ला के ऊपर लटकती रहेगी।

११

राज्य का धर्म-निरपेक्ष चरित्र

मुलिम पर्सनल ला के विरोधी अपने समर्थन में राज्य के सेक्युलर चरित्र का तर्क प्रस्तुत करते हैं। उनके नज़दीक सेक्युलरिज़्म का खुला तक़ाज़ा यह है कि तमाम नागरिकों के पारिवारिक क़ानूनों में एकरूपता होनी चाहिए। विभिन्न सम्प्रदायों के लिए अलग-अलग पारिवारिक क़ानून (Family Laws) उनके बीच अन्तर व भेद-भाव पैदा करने (Discrimination) के समानार्थी हैं जो राज्य के सेक्युलर चरित्र के विरुद्ध है। सेक्युलरिज़्म के इन अतिवादियों (Ultra-Secularists) से कोई पूछे कि क्या संसार के मानचित्र पर भारत ही सेक्युलर देश है या और भी सेक्युलर देश हैं ? उनको शायद मालूम नहीं कि कितनी सेक्युलर सरकारें ऐसी हैं जिन्होंने मुस्लिम पर्सनल ला को हाथ तक नहीं लगाया है। उदाहरण में थाईलैंड को लीजिए जहां बौद्ध मत के अनुयायियों की बहुसंख्या है और वहां सरकार ने उनके पारिवारिक क़ानूनों में सुधार भी किये हैं, पर उसका क्षेत्र बौद्धों तक सीमित है और मुसलमानों को इसका अपवाद समझ कर उन्हें अपने पर्सनल ला पर अमल करने की आज़ादी दे रखी है। यही हाल बर्मा का है और यूनान में तो मुस्लिम पर्सनल ला को मुफ़्तियों द्वारा लागू किया जाता है। अफ्रीक़ी देश ईथोपिया, घाना,गोल्ड कोस्ट और युगांडा में भी मुस्लिम पर्सनल ला को बाक़ी रखा गया है।[१] इन देशों में से अधिकांश का संविधान सेक्युलर है और कुछ देश तो कम्युनिज़्म विचारधारा के पोषक हैं, पर जब उनका सेक्युलर होना मुस्लिम पर्सनल ला के बाक़ी रखने में कोई बाधा न बना तो भारत का सेक्युलर होना इसमें क्यों बाधक बने ?

---

१. देखिए, *Family Law Reform in the Muslim World,* by Tahir Mahmood, p. 4.

राष्ट्रीय एकता

जब कभी साम्प्रदायिक दंगा होता है और देश के राजनीतिज्ञ उस पर विचार-विमर्श करने लगते हैं, तो प्रायः बहुमत यह होता है कि राष्ट्रीय एकता के लिए समान सिविल कोड (Uniform Civil Code) ज़रूरी है, मानो दंगे मुस्लिम पर्सनल ला के कारण होते हैं। अगर इसको समाप्त करके समान सिविल कोड लागू कर दिया जाय तो दंगों का यह सिलसिला रुक जायेगा। यह निदान अगर नीम हकीम डाक्टरों जैसे लोगों का नहीं है तो बताया जाय कि मुस्लिम पर्सनल ला के कारण कब और कहां सांप्रदायिक दंगे हुए हैं ? हज़ारों दंगों में से किसी एक ही दंगे की ओर संकेत कर दिया जाय। अब तक जितने कमीशन दंगों की जांच के लिए नियुक्त किये जा चुके हैं, उनमें से किसी ने भी अपनी यह रिपोर्ट नहीं दी है कि दंगे का कारण मुस्लिम पर्सनल ला था। फिर साम्प्रदायिक दंगों के सिलसिले में मुस्लिम पर्सनल ला की बहस छेड़ना क्या अर्थ रखता है ?

दंगों के अतिरिक्त भी विभिन्न सम्प्रदायों के मध्य भावनात्मक एकरूपता पैदा करने के लिए समान सिविल कोड को ज़रूरी बताया जाता है। जस्टिस वाई० वी० चन्द्रचूड ने एक अवसर पर बम्बई में भाषण करते हुए कहा–

One law of marriage for all would be an important step towards national integration.

–*Indian Express,* 21-1-1967

'तमाम लोगों के लिए विवाह का एक क़ानून राष्ट्रीय एकता की ओर अहम क़दम होगा।'

पर सत्य तो यह है कि यह तर्क ही बिल्कुल उल्टा है। क्योंकि इससे अल्पसंख्यकों को जब यह महसूस होगा कि उनकी धार्मिक और सांस्कृतिक परम्पराएं समाप्त की जा रही हैं तो उसकी प्रतिक्रिया अच्छी नहीं होगी, इससे अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों के सम्बन्ध पर ख़राब प्रभाव पड़ेगा। इसके विपरीत बहुसंख्यक वर्ग जो लोकतांत्रिक व्यवस्था में निर्णायक स्थान रखता है, अल्पसंख्यकों के साथ उदारता का व्यवहार करने पर तैयार हो जाय और विभिन्न सम्प्रदायों और गिरोहों को अधिक से अधिक धार्मिक व सांस्कृतिक स्वतंत्रता दी जाये तो उनके बीच सम्बन्ध और अच्छे होंगे और इससे सांप्रदायिक एकरूपता या राष्ट्रीय एकता पैदा करने में बड़ी सहायता मिलेगी। वरन राष्ट्रीय एकता के लिए जिस तर्क से समान सिविल कोड को ज़रूरी क़रार दिया जाता है, उस तर्क से तो समान उपासना (Uniform Worship Code) को भी ज़रूर सिद्ध कर दिखाया जा सकता है। मस्जिद और मंदिर को बाक़ी ही क्यों रहने दिया जाए। इन सब को ख़त्म करके राष्ट्रीय पूजा घर (National Temples) क्यों न बनाए जायें जहां तमाम सम्प्रदाय के लोग एक पंक्ति में खड़े होकर राष्ट्रीय आचार संहिता के अन्तर्गत संयुक्त उपासना करें और यह उपासना भी ईश्वर की नहीं बल्कि राष्ट्र (Nation) की होनी चाहिए क्योंकि जहां ईश्वर का नाम आया, आस्थाओं के विवाद यहीं खड़े हो जायेंगे और इस विवाद से सम्प्रदाय जन्म लेते हैं और सम्प्रदायों से फिर साम्प्रदायिकता पैदा होती है। अतएव न रहे बांस, न बजे बांसुरी के अनुसार इन तमाम बातों को समाप्त करना राष्ट्रीय एकता के लिए ज़रूरी है। ये राजनीतिज्ञ न जानें क्यों इतनी सीधी बात कहते हुए संकोच करते हैं।

नई सभ्यता के तक़ाज़े

मुसलमानों का एक सीमित वर्ग, जो यद्यपि संख्या की दृष्टि से बहुत छोटा है किन्तु जिसने 'नई रोशनी' में आंखें खोली हैं, आधुनिक रुझानों के मुताबिक़ पर्सनल ला में परिवर्तन का हामी है । इसका असली कारण यह नहीं है कि मज़हबी क़ानून सचमुच ही ज़ालिमाना है और मुस्लिम समाज में जो भी ख़राबी पाई जाती है, वह इसी का नतीजा है, इसलिए इसमें सुधार की ज़रूरत महसूस की जा रही है। ऐसा होना सम्भव क्योंकर है, जबकि मज़हबी क़ानून अल्लाह द्वारा उतारे गये हैं, जो बन्दों को अच्छी तरह जानता है। बल्कि इसकी असली वजह यह है कि इसकी आंखें आधुनिक सभ्यता की जगमगाहट से चकाचौंध हो गई हैं। और इन्साफ़ व बराबरी के जो विचार इसे पश्चिमी सभ्यता से मिले हैं इन्हें देखते हुए वह इस्लाम के सामाजिक सिद्धान्तों को दोषयुक्त समझने लगता है। उसकी नज़र में इस्लाम का सामाजिक ढांचा अब पुराना हो गया है, क्योंकि आधुनिक रुझानों से मेल नहीं खाता। इसलिए वह वर्ग इस क़ैद से मुक्त होकर आधुनिक रुझानों के अनुसार सामाजिक ढांचे की बुनियादें रखना चाहता है, कि जिसमें औरत और मर्द दोनों को बेलगाम आज़ादी हो, दोनों को एक ही सतह पर रखा जाये। और किसी को किसी पर वर्ग की हैसियत से प्रभुत्व न हो। ये आधुनिक रुझान उन्हें मुस्लिम पर्सनल ला में परिवर्तन और एक नए सिविल कोड की बुनियाद की मांग पर आमादा कर रहे हैं।

यदि इस वर्ग के लोग खुले दिमाग़ से इस्लाम के सामाजिक ढांचे का अध्ययन करते और इन्सानी फ़ितरत और उसकी नैतिक हैसियत को नज़रअन्दाज़ न करते तो उन्हें इस्लाम के सामाजिक ढांचे में कमाल दर्जे का हुस्न और बराबरी नज़र आती। इसमें कोई शक नहीं कि इस्लाम ने मर्द को औरत पर एक दर्जा प्रदान किया है और यह दर्जा बरतरी

का है। किन्तु बरतरी का यह दर्जा मर्द की क़ुदरती बनावट और मिज़ाज के अनुसार है और इसके बिना ख़ानदानी ज़िन्दगी में न कोई अनुशासन पैदा हो सकता है और न नैतिक मूल्य ही बाक़ी रह सकते हैं। इसलिए इस्लाम ने तलाक़ का अधिकार मर्द को दिया है न कि औरत को। अलबत्ता औरत को 'ख़ुलअ' का अधिकार ज़रूर दिया है। इसी प्रकार बाप की जायदाद में लड़के की तुलना में लड़की का हिस्सा आधा रखा गया है। क्योंकि आर्थिक ज़िम्मेदारी मर्द पर है। उसी को बीवी-बच्चों के खाने-पीने और आवास-प्रवास इत्यादि का प्रबन्ध करना है। इसके अतिरिक्त स्त्री अपने पति से महर भी पाती है, इसलिए इन्साफ़ का तक़ाज़ा यह है कि लड़के और लड़की के हिस्से में बराबर का बंटवारा नहीं हो।

किन्तु आधुनिक सभ्यता जो इन्साफ़ के नाम पर बेइन्साफ़ी की लाठी चलाना चाहती है, वह कब इस हक़ीक़त को मानेगी वह तो बराबरी को ही सब कुछ क़रार देती है। हालांकि मनुष्य का स्वभाव बराबरी के इस विचार से अपरिचित है। बाप और बेटा मनुष्य होने के नाते यक़ीनन बराबर हैं। इसके बावजूद बाप को बेटे पर बरतरी हासिल है, बेटे के लिए ज़रूरी है कि वह उसका लिहाज़ करे। इसलिए बेटे पर बाप की फ़र्मांबरदारी लाज़िम है। किन्तु यदि बराबरी के विचार को मान लिया जाए, तो कहना पड़ेगा कि बाप बेटे दोनों बराबर हैं : दोनों में वर्ग का कोई भेद-भाव नहीं है। और बेटे के लिए बाप की फ़र्मांबरदारी करने का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता। यदि यह ज़रूरी है कि बेटा बाप का फ़र्मांबरदार हो, तो इन्साफ़ और बराबरी के तक़ाज़े के अन्तर्गत यह क्यों न ज़रूरी समझा जाये कि बाप भी बेटे का फ़र्मांबरदार हो। ख़ुदा के हुक्म से बेनियाज़ी इख़्तियार करने के नतीजे में इन्सान भटक कर कहां से कहां पहुंच जाता है।

मुस्लिम देशों में मुस्लिम पर्सनल ला में किये जाने वाले परिवर्तन

जो लोग मुस्लिम पर्सनल ला में नवीन रुझानों और विचारों के अनुसार परिवर्तन लाना चाहते हैं वे प्रायः इसके प्रमाण में मुस्लिम देशों का उदाहरण देते हैं। इनके विचार से जब मुसलमान देशों में मुस्लिम पर्सनल ला में परिवर्तन किए गए हैं तो क्या भारत के मुसलमान संसार के मुसलमानों से कोई नये-निराले हैं जो किसी परिवर्तन का नाम लेना भी पसंद नहीं करते ? ये आपत्ति करने वाले वास्तव में वस्तुस्थिति का वास्तविक चित्र पेश नहीं करते और अतिशयोक्ति के साथ एक ग़लत भाव पैदा करने की कोशिश करते हैं।

सच तो यह है कि मुस्लिम देशों में भारी तादाद उन देशों की है जहां मुस्लिम पर्सनल ला में कोई परिवर्तन नहीं किया गया, बल्कि शरअी क़ानून ही लागू और कार्यरत है। सऊदी अरब, यमन, बहरैन, कुवैत, क़तर, अबूज़हबी, दुबई, अफ़ग़ानिस्तान, मालद्वीप, गिनी, सेंगाल, सुमालिया और नाइजीरिया इसके उदाहरण हैं। इन देशों में से किसी देश में हम्बली फ़िक़्ह लागू है तो किसी में मालिकी फ़िक़्ह, कहीं हनफ़ी फ़िक़्ह को क़ानून का स्थान प्राप्त है तो कहीं शाफ़ई फ़िक़्ह को। सऊदी अरब में हम्बली फ़िक़्ह को क़ानून का स्थान प्राप्त है, बल्कि वहां संवैधानिक आदेशानुसार यह ज़रूरी है कि हर प्रकार का क़ानून किताब व सुन्नत (क़ुरआन व हदीस) और सहाबा (प्यारे नबी के साथियों) के चरित्र के अनुसार होना चाहिए। यमन में ज़ैदी फ़िक़्ह लागू है, दक्षिणी यमन में शाफ़ई या हनफ़ी क़ानून की पैरवी की जाती है। बहरैन में मालिकी,

शाफ़ई और शिया फ़िक़्ह सम्बन्धित व्यक्तियों पर लागू किया जाता है। कुवैत में इस्लाम का पारिवारिक नियम लागू है और सामान्य रूप से मालिकी फ़िक़्ह कार्यरत है। (देखिए, *Family Law Reform in the Muslim World,* by Tahir Mahmood, p. 3) अफ़ग़ानिस्तान के संविधान के अनुसार वहां का सरकारी धर्म इस्लाम है और तमाम धार्मिक मामले हनफ़ी फ़िक़्ह के अनुसार अंजाम दिये जाते हैं। प्रचलित इस्लामी क़ानून में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया है। मालद्वीप में पारिवारिक क़ानून शाफ़ई मत का लागू है। अफ़्रीक़ी देशों चाड, गाम्बिया, गिनी, माली, मारटीनिया, नाइज़ीरिया, सिंगाल और सुमालिया में इस्लाम के पारिवारिक क़ानूनों में परिवर्तन के लिए अब तक कोई क़दम नहीं उठाया गया है। नाइज़ीरिया में मालिकी फ़िक़्ह को पारिवारिक और विरासती क़ानून का पद प्राप्त है।

जिन मुस्लिम देशों ने पारिवारिक क़ानूनों में सुधार किये हैं, उनमें अधिकांश सुधारों की स्थिति यह है कि या तो विभिन्न फ़िक़्ही शास्त्रों में से किसी शास्त्र की बात को क़ानूनी हैसियत दे दी गई है या फिर कुछ विस्तृत रूप दे कर उसे नियमित कर दिया गया है, जिनमें से कितने ही नियम मात्र प्रशासनिक हैं। केवल दो मुस्लिम देश ऐसे हैं जहां इस्लाम के पारिवारिक क़ानूनों को समाप्त करके सेक्युलर ढंग का सिविल कोड लागू करने का दुस्साहस किया गया है। ये दो देश तुर्की और अल्बानिया हैं। तुर्की में यह परिवर्तन सन १९२६ ई० में लाया गया जबकि इस्लाम के पारिवारिक और विरासती क़ानूनों से विमुखता दिलाकर स्विट्ज़रलैंड के सिविल कोड को लागू कर दिया गया, पर तुर्की के बारे में कौन नहीं जानता कि वहां मुस्तफ़ा कमाल के शासन काल में इस्लाम का चित्र किस तरह बिगाड़ा गया और किस ज़बरदस्ती से राज्य का गठन धर्म-विमुखता के आधार पर किया गया, यहां तक कि अरबी भाषा

में अज़ान देने तक का निषेध कर दिया गया था। इसलिए ऐसे देश का उदाहरण पेश करके मुस्लिम पर्सनल ला में परिवर्तन के लिए कोई औचित्य नहीं जुटाया जा सकता और फिर इस तथ्य को भी झुठलाया नहीं जा सकता कि कोई मुस्लिम देश अगर शरीअत की मंशा के ख़िलाफ़ मुस्लिम पर्सनल ला में कोई परिवर्तन कर दे या उसे समाप्त करके कोई ग़ैर-इस्लामी कोड लागू करे तो न शरअी हैसियत से उसे इसका अधिकार है और न इसे दूसरे देशों के मुसलमानों के लिए कोई अनुकरणीय उदाहरण बनाया गया है। फिर अगर तुर्की का उदाहरण दिया जाता है तो उन देशों का उदाहरण क्यों नहीं दिया जाता जिन्होंने इस्लाम के पारिवारिक और विरासती क़ानूनों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया है। ऐसे देशों के हाल का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है और जो एक दो नहीं, बल्कि उनकी तादाद काफ़ी है।

इस्लाम के पारिवारिक और विरासती क़ानूनों को ख़त्म करने का दुस्साहस तो अब तक इस्राईल की सरकार भी नहीं कर सकी है। तुर्की का सन १९१७ का बनाया हुआ पारिवारिक क़ानून, जो शरीअत की रोशनी में तैयार किया गया था और जिसको बाद में तुर्की की सरकार ने सन १९२६ में समाप्त कर दिया था, अब तक इस्राईल में मुसलमानों के लिए चलायमान है, अलावा इसके कि इस्राइली सरकार ने उसको सामान्य राष्ट्रीय क़ानूनों के अन्तर्गत रखा है।

रहा पाकिस्तान का उदाहरण जिसे परिवर्तन चाहने वाले बड़े उत्साह के साथ पेश करते हैं तो सच यह है कि पाकिस्तान में अब भी मुस्लिम पर्सनल ला ही है न कि सेक्युलर सिविल कोड। हां सन १९६१ के पारिवारिक क़ानून द्वारा कुछ 'सुधार' अवश्य किये गये हैं। इन 'सुधारों' का रूप भी अधिकतम प्रशासनिक है या कुछ को क़ायदे क़ानून का रूप दे दिया गया है, मोटे-मोटे सुधारों में से एक यह है कि हर शादी

को रजिस्टर्ड करना ज़रूरी क़रार दे दिया गया है, पर ऐसा न करने पर विवाह समान सिविल कोड क़ानून के अनुसार नाजायज़ (अवैध) नहीं होगा, बल्कि इसके लिए कुछ सज़ा प्रस्तावित की गई है। दूसरा 'सुधार' यह है कि एक पत्नी की मौजूदगी में दूसरी के लिए आरबिट्रेशन कौन्सिल से इजाज़त लेना ज़रूरी है। पर ऐसा न करने पर कुछ सज़ा रखी गई है न कि दूसरी शादी को बातिल (अवैध) क़रार दिया गया है। इससे स्पष्ट है कि एक से अधिक विवाह पर पूर्णतः पाबंदी नहीं लगाई गई है। तीसरा यह कि तलाक़ के सिलसिले में मर्द पर अनिवार्य कर दिया गया है कि वह आरबिट्रेशन कौन्सिल को इसकी सूचना दे। वह कौन्सिल पति-पत्नी के बीच समझौता कराने की कोशिश करेगी। इससे स्पष्ट है कि इस क़ानून ने मर्द के हाथ से तलाक़ का अधिकार छीन नहीं लिया है बल्कि एक नियम बनाकर समझौते का एक अवसर जुटाया है। चौथा सुधार विरासत के सम्बन्ध में हुआ है और वह यह कि यतीम पोते और पोती को हिस्सा दिलवाया गया है जितना वह अपने बाप के ज़िन्दा रहने की हालत में दादा की जायदाद में पाते। इन 'सुधारों' पर शरअी दृष्यि से आपत्ति की जा सकती है। पर यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि पाकिस्तान में ऐसा नहीं हुआ कि मुस्लिम पर्सनल ला को निरस्त ही कर दिया गया हो और इसकी जगह पर ग़ैर-इस्लामी कोड लागू कर दिया गया हो और न ही मुस्लिम पर्सनल ला में बड़े पैमाने पर कोई परिवर्तन किया गया है।

फिर इस बात को भी नहीं भूलना चाहिए कि इन परिवर्तनों का पाकिस्तानी उलेमा ने बहुत कड़ा विरोध किया था और जनता ने घोर प्रदर्शन किया था, पर वहां के डिक्टेटरों ने लोकमत को कोई महत्व न दिया। डिक्टेटरशिप का यह उदाहरण हमारे लोकतन्त्र के लिए कैसे दलील बन सकता है।

इसके अलावा यह बात भी ध्यान देने की है कि पाकिस्तान की

सरकार ने ये संशोधन मुसलमानों के पर्सनल ला में किए हैं जबकि मुसलमान बहुसंख्यक हैं पर क्या पाकिस्तान के अल्पसंख्यकों के पर्सनल ला में हस्तक्षेप किया गया है ? अगर ऐसा नहीं है तो फिर पाकिस्तान में मुस्लिम पर्सनल ला में किए गए संशोधनों से भारत के मुस्लिम पर्सनल ला में संशोधन के लिए, जबकि यहां के मुसलमान अल्पसंख्यक हैं, किस प्रकार औचित्य निकल आता है ?

समान सिविल कोड की रूप-रेखा

समान सिविल कोड बनाने में अगर सरकार सफल हो गई तो उसका कार्य-क्षेत्र केवल एक से अधिक शादी के निषेध ही तक सीमित न होगा, बल्कि उससे शादी, ख़ुलअ, फ़स्ख़ और विरासत जैसे तमाम मामले आ जायेंगे और उनके सिलसिले में जो कोड बनाया जाएगा, वह तमाम नागरिकों पर लागू होगा, इसे सोचे बिना कि कौन मुसलमान है और कौन हिन्दू, कौन ईसाई है और कौन पारसी। यह हर प्रकार के धार्मिक बन्धनों से स्वतंत्र होगा, इसलिए इसका टकराव धर्मशास्त्रियों के मतों और समुदाय की रायों ही से न होगा, बल्कि इसकी मार से क़ुरआन व सुन्नत के खुले आदेश भी न बच सकेंगे।

समान सिविल कोड किस तरह के नियमों पर सम्मिलित होगा, इसका उत्तर यद्यपि उस समय मिलेगा जबकि (ख़ुदा न करे) समान सिविल कोड बनाने की नौबत आएगी। पर यह कोड जिन लाइनों पर तैयार होगा वे अनजानी और अनिर्धारित नहीं हैं, क्योंकि वह बनेगा ही बहुमत के आधार पर, जैसा कि संसद में क़ानून बनाने का तरीक़ा चल रहा है। इस तरह व्यावहारिक रूप से बहुसंख्यक वर्ग के बारे में मालूम है कि वह उन्हीं लाइनों पर सोचता है, जो पाश्चात्य सभ्यता की हैं। जैसे यह कि बहुपत्नी विवाह का निषेध होना चाहिए, तलाक़ का अधिकार मर्द को नहीं, बल्कि अदालत को होना चाहिए, विरासत के मामले में लड़के और लड़की का हिस्सा बराबर होना चाहिए, आदि और इस बात को सभी जानते हैं कि बहुसंख्यक वर्ग ने कुछ साल पहले हिन्दू कोड बिल पास किया था, जो हिन्दू मैरेज एक्ट और हिन्दू सक्सेशन एक्ट की शक्ल में चलायमान है। इन क़ानूनों में बहुसंख्यक वर्ग का

मस्तिष्क खुल कर सामने आ गया है। इसलिए यह कहना ग़लत न होगा कि हिन्दू कोड के आइने में समान सिविल कोड की प्रति छवि देखी जा सकती है। इसका समर्थन प्रो० जे० डंकन के (जो लंदन युनिवर्सिटी में ओरियंटल लाज के प्रोफेसर हैं) इस विचार से भी होता है, जिसे उन्होंने सिविल कोड के विषय पर व्यक्त किया है। वे लिखते हैं :–

'जिस सिविल कोड का संविधान की धारा ४४ में वायदा किया गया है, हिन्दू कोड़ की तरह है, जिसके बारे में हम इसे पहले वार्ता कर चुके हैं। यद्यपि (हिन्दू कोड) नाम से भ्रम पैदा करने वाला है, पर उचित (सिविल कोड) यही है।'

जब बहुसंख्यक वर्ग का मस्तिष्क और चिन्तन-शैली मालूम है तो उससे यह किस प्रकार आशा की जा सकती है कि वह समान सिविल कोड बनाते समय इससे बिल्कुल भिन्न निर्णय करेगा। खण्डों व अंशों में, सम्भव है कुछ अन्तर हो जाए, पर सैद्धान्तिक निर्णय वही होंगे जो हिन्दू कोड के रूप में मौजूद हैं। दूसरे शब्दों में हिन्दू कोड को थोड़े संशोधन के साथ समान सिविल कोड की हैसियत दे दी जाएगी, इसलिए ज़रूरी है कि वर्तमान हिन्दू कोड का सर्वेक्षण क़रके देखा जाए कि यह मुस्लिम पर्सनल ला से कितना भिन्न और कितना टकराने वाला है।

हिन्दू मैरेज एक्ट १९५५, जिसका साधारण नाम हिन्दू कोड है, के अनुसार एक पत्नी की मौजूदगी में दूसरी शादी नहीं की जा सकती। जबकि इस्लाम न्याय की शर्त के साथ चार बीवियों तक की इजाज़त देता है और यह इजाज़त अनेक मसलहतों के आधार पर दी गई है। कुछ हालतों में दूसरी शादी की ज़रूरत पड़ जाती है। अगर किसी की पत्नी चिर-रोगिणी है या उसके संतान नहीं है तो मर्द के सामने दो शक्लें होती हैं, एक यह कि वह उसे तलाक़ दे दे और दूसरी औरत से निकाह कर ले और दूसरी शक्ल यह कि उसको अपने साथ रखते हुए दूसरा विवाह कर ले। स्पष्ट है कि पहली शक्ल के मुक़ाबले में दूसरी शक्ल

बेहतर है, पर अगर बहुपत्नित्व पर पाबंदी लगा दी गई तो लोग पहली शक्ल अपनाने पर मजबूर होंगे और स्पष्ट है कि यह शक्ल औरत के हक़ में फ़ायदेमंद न होगी।

विधवाओं की समस्याओं के हल की दृष्टि से भी बहुपत्नित्व की गुंजाइश रखना ज़रूरी है और सबसे बड़ी बात यह है कि इस्लाम ने, जो कि पूर्णतः संयम और पाकी सिखाने वाला धर्म है, मर्द को नाजायज़ राहों से बचाने के लिए बहुपत्नित्व की राह खुली रखी है। अतएव इस जायज़ राह को बन्द करना नाजायज़ राहों को खोल देने का कारण बनेगा और पाश्चात्य सभ्यता ने यही वस्तुस्थिति पैदा कर रखी है। क़ानूनी तौर पर एक पत्नित्व पर आग्रह है, पर ग़ैर-क़ानूनी तौर पर जितनी औरतों के साथ ताल्लुक़ात पैदा किए जा सकें सबके लिए गुंजाइश है, बल्कि पश्चिमी सभ्यता ने ललित-कला, नृत्य व संगीत आदि के द्वारा यौन-पथ-भ्रष्टता का भरपूर सामान कर दिया है और ऐसी भावनायें उभारी हैं कि आदमी एक औरत को काफ़ी न समझे, पर दूसरी ओर एक पत्नित्व को क़ानून से लागू कराना चाहता है। पश्चिमी समभ्यता के इन गुणग्राहकों को आख़िर क्या अधिकार पहुंचता है कि वे बहपत्नित्व की जायज़ राह को बन्द कर दें।

तलाक़ के सिलसिले में भी हिन्दू कोड तलाक़ के इस्लामी क़ानून के बिल्कुल ख़िलाफ़ है और वर्तमान सभ्यता से मिलता-जुलता है। उसने तलाक़ का अधिकार मर्द को नहीं बल्कि अदालत को दिया है। अगर कोई व्यक्ति अपनी पत्नी को तलाक़ देना चाहता है या पत्नी तलाक़ हासिल करना चाहती है तो पति या पत्नी को अदालत में आवेदन करना होगा। अगर अदालत कोड में अंकित कारणों में से किसी कारण को आधार बनाकर तलाक़ की डिग्री (Decree) दे देती है तो दोनों में अलगाव हो जाएगा, लेकिन कोई अदालत तलाक़ की किसी ऐसे आवेदन पर विचार नहीं करेगी जो विवाह के तीन वर्ष के भीतर पेश

की गई हो।

इस्लाम ने मर्द को तलाक़ का अधिकार और औरत को ख़ुलअ (तलाक़ लेने) का हक़ दिया है। हिन्दू कोड बिल दोनों बातों का निषेध करता है यानी मर्द को न तलाक़ देने का अधिकार है और न पत्नी को ख़ुलअ हासिल करने का, बल्कि दोनों इस बात के पाबंद हैं कि अपना मामला अदालत में ले जायें। इसमें जो कठिनाई है, वह स्पष्ट है। औरत और मर्द के मामलों को सदैव अदालत के सामने लाना कोई उचित बात नहीं है और फिर क़ानूनी तौर पर आरोप सिद्ध कर दिखाना भी आसान नहीं होता, पर इस तरह की क़ानूनी पेचीदगियां पैदा करने का फल या तो यह होगा कि मर्द तलाक़ के चक्कर में पड़ने के बजाय पत्नी को निस्सहाय छोड़ देगा और उसका जीना दूभर कर देगा या फिर उस पर झूठे और घिनौने अपराध लगा कर मामला अदालत में ले जाएगा ताकि अदालत से अपने पक्ष में फ़ैसला प्राप्त कर सके। इसी तरह औरत के लिए यह कठिनाई पैदा होगी कि अगर वह मर्द से छुठकारा हासिल करना चाहती हो तो ख़ुलअ का आसान रास्ता अपना न सकेगी, बल्कि उसको अदालत के चक्कर काटने पड़ेंगे और अगर अदालत का फ़ैसला उसके पक्ष में न हो सका तो फिर उस पति के साथ उसके निर्वाह की क्या शक्ल होगी, जिसके ख़िलाफ़ वह अपना मामला अदालत में ले गयी थी ? अगर दूरगामी परिणामों को निगाह में रखा जाए तो विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि तलाक़ का अधिकार मर्द के हाथ से छीन लेना और अदालत को दे देना औरत के लिए उपयोगी नहीं हो सकता, बल्कि उसके लिए हानिप्रद ही होगा।

एक प्रश्न यह भी पैदा होता है कि अगर तलाक़ का अधिकार मर्द के हाथ से छीन लिया गया, लेकिन किसी मुसलमान ने फिर भी शरई तरीक़े पर अपनी पत्नी को तलाक़ (बाइना) दे दी तो इस शक्ल में व्यवहारत: क्यां होगा ? क़ानून तो इस तलाक़ को मानने से रहा, मानो

उसे क़ानूनी तौर पर तलाक़ के बाद भी अपनी पत्नी बनाए रखना होगा। हालांकि शरई तौर पर वह उसकी पत्नी नहीं रही। ऐसे ही अगर मर्द यह देखे कि उसकी पत्नी अवैध संबंध बना रही है, लेकिन अदालत में इसका कोई प्रमाण न जुटा सकता हो और तलाक़ का अधिकार उससे छीन लिया गया हो तो वह उसे अपनी पत्नी बनाए रखने पर मजबूर होगा। यह स्थिति एक मुसलमान के लिए, जिसकी निगाह में नैतिकता और पावनता जीवन की पूंजी होती है, कितनी परेशानी का कारण होगी।

नान-नुफ़्क़ा के सिलसिले में हिन्दू कोड में कहा गया है कि अदालत द्वारा पति-पत्नी के बीच जब अलगाव कराया जाएगा तो मर्द और औरत दोनों के आर्थिक हालात को सामने रख कर अदालत मर्द या औरत पर नान-नुफ़्क़ा की ज़िम्मेदारी उस समय तक के लिए डाल सकती है, जब तक कि प्रार्थी दूसरा विवाह न कर ले या दोनों में एक का देहान्त न हो जाये। मानो न्याय और समता का तक़ाज़ा यह ठहरा कि जिस प्रकार मर्द पर नान-नफ़्क़ा की ज़िम्मेदारी डाली जाती है, औरत पर भी डाली जाये और यद्यपि दोनों के बीच दाम्पत्य-सम्बन्ध बाक़ी न रहा, लेकिन नान-नफ़्क़ा की ज़िम्मेदारी फिर भी बाक़ी रह सकती है। इसका अर्थ इसके सिवा और क्या है कि तलाक़ को अधिक से अधिक कठिन बना दिया जाए, पर यह नहीं सोचा जाता कि इसका नतीजा क्या निकलेगा ? ऐसी स्थिति में जबकि मर्द, पत्नी को रखना न चाहता हो और उसको छोड़ने में भी असाधारण कठिनाइयों का सामना हो तो वह औरत के जीवन को कटु बनाए रखने का पूरा-पूरा सामान कर सकता है।

विरासत के सिलसिले में हिन्दू सक्सेशन ऐक्ट १९५६ चलायमान है, इसे भी आम तौर से 'हिन्दू कोड' कहा जाता है और इसकी भी बुनियाद हिन्दू शास्त्र पर नहीं, बल्कि आधुनिक दृष्टिकोणों पर रखी गई है। इस कोड में विरासत की तक़सीम के लिए जो नियम बनाए गए

हैं, उनका सार निम्न है :

(१) विरासत सबसे पहले प्रथम वर्ग के वारिसों में बांट दी जाएगी और प्रथम वर्ग के वारिसों में लड़का, लड़की, विधवा, माता, पोता और पोती जिनके पिता का दादा के जीवन में देहान्त हो गया हो शामिल हैं। इनमें से हर एक को बराबर का हिस्सा मिलेगा, हां पोतों और पोतियों को संयुक्त रूप से केवल एक भाग मिलेगा।

(२) अगर प्रथम वर्ग के वारिस मौजूद न हों तो विरासत दूसरे वर्ग के वारिसों में बांट दी जाएगी और इसमें पहली श्रेणी को दूसरी श्रेणी और दूसरी श्रेणी को तीसरी श्रेणी पर प्रमुखता दी जाएगी। पहली श्रेणी में सिर्फ़ बाप वारिस है। दूसरी श्रेणी में पोती का लड़का और लड़की, भाई और बहन हैं। तीसरी श्रेणी में नवासे का लड़का और लड़की और नवासी का लड़का और लड़की शामिल हैं। चौथी श्रेणी में भतीजा, भान्जा, भतीजी और भांन्जी शामिल हैं। पांचवीं श्रेणी में दादा और दादी, छठी श्रेणी में बाप की विधवा और भाई की विधवा और सातवीं श्रेणी में चचा और फूफी शामिल हैं।

(३) मय्यत अगर औरत की है तो उसकी जायदाद सबसे पहले लड़कों, लड़कियों, (पोतों, पोतियों को शामिल करके जिनके पिता का देहान्त दादी के जीवन में हुआ हो और जिनका भाग सामूहिक रूप से अपने माता-पिता के बराबर होगा) और पति के बीच तक़सीम होगी। दूसरी श्रेणी में पति के वारिसों में, तीसरी श्रेणी में मांता और पिता में, चौथी श्रेणी में बाप के वारिसों में और अन्तिम रूप से मां के वारिसों में तक़सीम होगी।

विरासत का यह क़ानून, जिसको शायद थोड़े संशोधन के साथ समान सिविल कोड की शक्ल दे दी जाए, इस्लाम के विरासती क़ानून से मौलिक रूप से भिन्न है। इस्लाम ने लड़की का हिस्सा लड़के की अपेक्षा आधा रखा है, जिसके कारणों का हम ऊपर विवेचन कर चुके हैं, पर

वर्तमान सभ्यता ने तथ्यों से आंखें मीच कर ही समता का अलग नियम अपना लिया है, जिसके अनुसार मर्द और औरत दोनों को एक ही स्तर पर रखा जा रहा है और इसी सभ्यता के प्रभावाधीन हिन्दू कोड में लड़के और लड़की का हिस्सा बराबर-बराबर निर्धारित कर दिया गया है, वरन् हिंदुओं में औरतों को हिस्सा देने का रिवाज ही कहां था ? मानो एक सीमा वह थी और दूसरी सीमा यह है, पर इस्लाम की राह इन दोनों के बीच की राह है।

इस्लाम ने पत्नी का हिस्सा औलाद होने की शक्ल में १/४ और औलाद न होने की शक्ल में १/८ निर्धारित किया है। मां का हिस्सा औलाद होने की शक्ल में १/६ और औलाद न होने की शक्ल में १/३ निर्धारित किया है, पर हिन्दू कोड में माता और विधवा, लड़का और लड़की सबका हिस्सा बराबर है।

इस्लाम ने बाप का हिस्सा औलाद होने की शक्ल में १/३ और औलाद न होने की शक्ल में पत्नी और मां को देने के बाद बाक़ी माल का वारिस बाप को क़रार दिया है और अगर इनमें से कोई ज़िन्दा न हो तो बाप पूरे माल का वारिस होगा, पर हिन्दू कोड में बाप को दूसरे श्रेणी के वारिसों में रखा गया है, जिसका अर्थ यह है कि पहली श्रेणी के वारिसों जैसे लड़का, लड़की, पत्नी और मां की मौजूदगी में बाप को कुछ नहीं मिलेगा। वर्तमान सभ्यता की न्याय के बारे में कल्पना यह है कि मां को भाग अवश्य ही मिलना चाहिए, बाप को देन की क्या ज़रूरत !

इस्लाम ने निकटतम नातेदारों की मौजूदगी में दूसरे नातेदारों के लिए हिस्सा मुक़र्रर नहीं किया है, हां इनके लिए १/३ की हद तक वसीयत की गुंजाइश रखी है और यतीम पोते की समस्या का हल भी इसमें मौजूद है, पर हिन्दू कोड में इससे भिन्न क्रम अपनाया गया है और निकटवर्ती नातेदारों की मौजूदगी में दूसरे नातेदारों को हिस्सा दिलवाया

गया है।

वर्तमान हिन्दू कोड में यद्यपि इस्लाम के विरासती क़ानून से फ़ायदा उठाया गया है, जैसे लड़कियों को हिस्सा दिलवाना, पर यह कोड इस्लाम के विरासती नियमों से मौलिक रूप से भिन्न है, अतएव अगर उसने समान सिविल कोड का स्थान प्राप्त कर लिया तो मुसलमानों के लिए तरह-तरह की समस्याएं पैदा हो जाएंगी। किसी रिश्तेदार को शरई हिस्से से कम मिलेगा और किसी को इससे ज़्यादा मिलेगा और कोई महरूम हो जायेगा। यह खुला हुआ अन्याय होगा, जिसे शरीअत के निर्धारित भाग से अधिक मिलेगा, वह उसके लिए जायज़ न होगा, क्योंकि उस माल की प्राप्ति हक़ मारने की बुनियाद पर होगी, पर समान सिविल कोड के समर्थक मुसलमानों को हराम माल खाने के लिए मजबूर करना चाहते हैं।

इन्डियन सक्सेशन एक्ट

समान सिविल कोड की रूप-रेखा जान लेने के बाद भी अगर किसी को आग्रह हो कि समान सिविल कोड हिन्दू कोड जैसा नहीं हो सकता तो इससे हटकर भी इन्डियन सक्सेशन एक्ट १९२५ (Indian Succession Act 1925) और स्पेशल मैरेज एक्ट १९५४ (The Special Marriage Act 1954) के आइने में भी समान सिविल कोड का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है।

इण्डियन सक्सेशन एक्ट मुसलमान, हिन्दू, बौद्ध, जैन और सिख सम्प्रदायों का अपवाद करके शेष तमाम नागरिकों के लिए लागू करने योग्य है :–

(१) वसीयत पर कोई पाबंदी नहीं है। कोई व्यक्ति भी अपनी पूरी जायदाद के लिए वसीयत कर सकता है। –(Section 59)

(२) अगर मय्यत ने वसीयत नहीं की थी और उसके पीछे सन्तान और विधवा है तो उस की विधवा को १/३ और सन्तान को २/३ मिलेगा। –(Section 33 to 43)

(३) अगर उसने सन्तान नहीं छोड़ी है तो विधवा को १/२ मिलेगा और शेष भाग दूसरे नातेदारों को।

(४) अगर उसने विधवा नहीं छोड़ी है तो पूरी जायदाद उसकी सन्तान में बांट दी जायेगी और संतान न मौजूद होने की सूरत में दूसरे नातेदारों में अगर दूसरे नातेदार भी न मौजूद हों तो वारिस सरकार होगी।

(५) पति को उतना ही भाग मिलेगा, जितना कि पति की जायदाद में विधवा को मिलता है।

(६) सन्तानों के बीच हिस्से बराबर-बराबर बटेंगे अर्थात् लड़की और लड़के का भाग बराबर-बराबर होगा।

(७) संतानों में से अगर कोई मर चुका है तो उसका हिस्सा निकाला जाएगा और वह पोते-पोती को मिलेगा।

(८) अगर मरने वाली की कोई सन्तान नहीं है तो विधवा का हिस्सा निकालने के बाद जायदाद इस तरह बंटेगी :–

(क) अगर बाप ज़िन्दा है तो वह पूरी ज़ायदाद का वारिस होगा।

(ख) अगर बाप ज़िन्दा नहीं है तो मां, भाई, बहन के बीच जायदाद बराबर-बराबर बंटेगी।

यह एक्ट भी इस्लामी विरासत विधान से मौलिक रूप से भिन्न है। इस्लाम ने वसीयत का हक़ सिर्फ़ १/४ की हद तक दिया है पर उपर्युक्त एक्ट पूरी जायदाद की वसीयत का अधिकार देता है। इस्लाम ने लड़की का भाग लड़के की अपेक्षा आधा निर्धारित किया है। पर इस एक्ट ने दोनों के भागों में एकरूपता पैदा की है। इस्लाम ने पत्नी का भाग सन्तान मौजूद होने की स्थिति में १/८ और संतान न होने की स्थिति में १/४ निर्धारित किया है, पर इस एक्ट ने पत्नी का भाग १/४ और संतान न होने की स्थिति में १/२ निर्धारित किया है। इसी प्रकार पति के लिए १/५ और संतान न होने की स्थिति में १/२ निर्धारित किया है। जबकि इस्लाम के विरासत विधान में पति का भाग सन्तान न होने की स्थिति में १/२ और सन्तान के मौजूद होने की स्थिति में १/४ निर्धारित किया गया है।

इस्लाम नें संतान की मौजूदगी में माता-पिता का भी भाग निर्धारित किया है, पर उपर्युक्त एक्ट सन्तान की मौजूदगी में माता-पिता को विरासत से महरूम कर देता है।

इन उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो गई कि अगर इण्डियन सक्सेशन एक्ट सन् १९२५ ने समान सिविल कोड की जगह ले ली तो मुसलमानों की पूरी विरासत व्यवस्था बदल जायेगी और एक ऐसा क़ानून उसके सिर पर थोपा जायेगा, जो शरीअत से बुनियादी तौर पर टकरा रहा है और वास्तव में सत्य व न्याय के ख़िलाफ़ है।

स्पेशल मैरेज एक्ट

स्पेशल मैरेज एक्ट सन १९५४ के तहत कोई भी मर्द और औरत शादी कर सकते हैं, बशर्ते कि वे मैरेज अफ़सर के सामने इस बात का एलान करें कि वे इस एक्ट के तहत शादी कर रहे हैं और यह एलान नियमित रूप से लिखित रूप में हो।

इस एक्ट की प्रमुख बातें जो शरई क़ानून के ख़िलाफ़ हैं, निम्न हैं :

१. एक पत्नी की मौजूदगी में दूसरा विवाह करना अपराध है, जिसकी सज़ा सात साल तक की क़ैद है।

२. चचेरे भाई, फुफेरे भाई, ख़लेरे भाई और ममेरे भाई से विवाह वर्जित है।

३. तलाक़ का अधिकार सिर्फ़ अदालत को है। मर्द या औरत जो भी तलाक़ देना चाहता हो, उन कारणों के अलावा जो एक्ट में दर्ज हैं, किसी कारण को भी आधार बनाकर तलाक़ की दरख़्वास्त अदालत को दे सकता है और अगर अदालत बयान से संतुष्ट हो जाती है तो पति-पत्नी के बीच विभेद करा देगी।

४. अगर औरत और मर्द दोनों विभेद चाहते हैं, तब भी उन्हें अदालत ही से तलाक़ लेनी होगी।

५. तलाक़ की कोई दरख़्वास्त, विवाह के तीन वर्ष गुज़ारने से पहले पेश नहीं की जा सकती।

६. अदालत द्वारा विभेद की स्थिति में जबतक कि एक वर्ष न बीत जाए, कोई फ़रीक़ दोबारा विवाह नहीं कर सकता।

७. अदालत द्वारा विभेद की स्थिति में मर्द को औरत का नफ़क़ा

उस समय तक देना होगा जबतक कि औरत दूसरा विवाह नहीं कर लेती या उसका देहान्त नहीं हो जाता।

८. जो व्यक्ति इस एक्ट के तहत विवाह करेगा, विरासत के सिलसिले में उसको जायदाद पर इण्डियन सक्सेशन एक्ट १९२५ ई० लागू होगा।

मुसलमानों का दृष्टिकोण

हिन्दू कोड, इन्डियन सक्सेशन एक्ट और स्पेशल मैरेज एक्ट का संक्षेप में जो सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया, उससे कुछ बातें स्पष्ट हो जाती हैं। एक यह कि तीनों एक्ट, जिस मस्तिष्क की पैदावार हैं, समान सिविल कोड भी उसी मस्तिष्क की पैदावार होगा। दूसरे यह कि जिस मस्तिष्क ने एक छोड़ तीन-तीन शरीअतें गढ़ रखी हों, वह बड़ी निर्लज्जता के साथ एक चौथी शरीअत भी समान सिविल कोड के नाम से गढ़ सकता है। तीसरे यह कि पारिवारिक समस्याओं के सिलसिले में बहुसंख्यक वर्ग के सोचने का ढंग वही है जिस का पाठ नई सभ्यता ने पढ़ाया है। चौथे यह कि उपर्युक्त तीनों क़ानूनों में नए रुझानों व दृष्टिकोणों का बोलबाला है और अन्तिम बात यह कि इन तथ्यों की मौजूदगी में समान सिविल कोड की रूप-रेखा के बारे में अंदाज़ा करना कठिन नहीं है। इसकी रूप-रेखा बिल्कुल स्पष्ट है और उपर्युक्त तीनों एक्ट इसका प्रतिनिधित्व करते हैं।

इसके बाद एक मुसलमान जो इस्लाम को अल्लाह का उतारा हुआ धर्म मानता हो और मुस्लिम पर्सनल ला को शरीअत का महत्वपूर्ण भाग समझता हो, मुस्लिम पर्सनल ला का विरोधी और समान सिविल कोड का समर्थक कैसे हो सकता है ? वह मुस्लिम पर्सनल ला में किसी ऐसे परिवर्तन का भी समर्थन नहीं कर सकता जो किताब व सुन्नत की मन्शा के ख़िलाफ़ मात्र नयी सभ्यता के तक़ाज़ों को पूरा करने की दृष्टि से की जाए।

अल्लाह का शुक्र है कि इस सम्बन्ध में मुस्लिम जनमत जागृत है और वह मुस्लिम पर्सनल ला में किसी भी परिवर्तन के लिए तैयार नहीं

है और यह कि मुस्लिम महिलायें, जिनके बारे में मुस्लिम पर्सनल ला के विरोधी यह आरोपित करने की कोशिश कर रहे थे कि वे शरई क़ानूनों से तंग आ गई हैं और उदासीन हैं, वे मुस्लिम पर्सनल ला की सुरक्षा के लिए कार्य क्षेत्र में उतर पड़ी हैं। उन्होंने बम्बई, नागपुर, नांडेड, परभनी, हैदराबाद, पूना, अहमदाबाद, लखनऊ, इलाहाबाद, बंगलौर, कलकत्ता और कानपुर में बड़े-बड़े सम्मेलनों को आयोजित करके और हज़ारों की संख्या में शामिल हो कर मुस्लिम पर्सनल ला के समर्थन में ज़ोरदार आवाज़ उठायी है और खुल्लम-खुल्ला यह ऐलान किया कि शरई क़ानूनों से वे पूरी तरह संतुष्ट हैं और वे इनके लिए पर्याप्त हैं।

मुस्लिम पर्सनल ला के इस महत्व और धर्म में उसके स्थान तथा उसके समर्थन में मुसलमानों के जनमत को देखते हुए उसे ख़त्म करने या उसमें तबदीली करने की मांग, जिस वर्ग की ओर से भी हो, सही नहीं हो सकती। मुसलमानों के तो किसी वर्ग को इस प्रकार की मांग शोभा ही नहीं देती।

रहे ग़ैर-मुस्लिम, तो वे भी अगर मुसलमानों की समस्याओं और उनकी कठिनाइयों को समझने की कोशिश करेंगे तो मुसलमानों के साथ उदारता का मामला करने के लिए तैयार हो जायेंगे और मुस्लिम पर्सनल ला के सिलसिले में मुसलमानों के दृष्टिकोण के बारे में किसी ग़लतफ़हमी में नहीं पड़ेंगे, बल्कि इसको उनका दायित्व समझेंगे। इसी तरह सरकार को भी मुसलमानों का दृष्टिकोण ठीक-ठीक समझने की कोशिश करनी चाहिए और मुस्लिम पर्सनल ला के सिलसिले में कोई ऐसा क़दम नहीं उठाना चाहिए, जो धर्म में हस्तक्षेप के पर्याय हो, बल्कि ज़्यादा धार्मिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता का सुबूत देकर लोकतंत्र की दृढ़ता का सामान जुटाना चाहिए।

सुधार का सही तरीक़ा

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि मुस्लिम समाज धार्मिक दृष्टि से जिस पतन का शिकार है, उसके नतीजे में उस सामाजिक जीवन में भी तरह-तरह के दोष पैदा हो गए हैं। न मर्द औरतों के हक़ ठीक तौर से अदा करते हैं और न औरतें ठीक तौर से मर्दों के हक़ अदा करती हैं। 'बड़ा' होने की हैसियत से मर्द को इस्लाम ने जो अधिकार दिए हैं उनका अनुचित प्रयोग भी होता है, पर इसकी कोई ज़िम्मेदारी इस्लाम और उसकी शरीअत पर नहीं आती, बल्कि इसकी पूरी की पूरी ज़िम्मेदारी समाज के व्यक्तियों पर आ पड़ती है, क्योंकि ऐसा केवल इसलिए है कि इस्लाम की शिक्षाओं पर पूरी तरह अमल नहीं किया गया। फिर इसका यह उल्टा इलाज सोचना कैसे सही हो सकता है कि इस बिगाड़ की ज़िम्मेदारी शरई क़ानूनों पर डालकर ग़ैर-शरई क़ानूनों को सुधार का ज़रिया बनाया जाए। आख़िर मुसलमानों के जीवन का कौन सा अंग ऐसा है जिसमें बिगाड़ नहीं पाया जाता। अगर हर बिगाड़ की ज़िम्मेदारी इसी शरई हुक्मों पर डाली जाने लगे तो फिर इस्लाम ही से हाथ धोना पड़ेगा और हर रोग का इलाज नई सभ्यता के भीतर ही खोजना पड़ेगा। इस्लाम से यह वैर और वर्तमान सभ्यता से यह मेल विष को अमृत समझना नहीं है तो और क्या है ?

सच तो यह है कि समाज के सुधार के लिए लोगों के भीतर ईश-भय पैदा करने, इस्लामी शिक्षाओं से उन्हें परिचित कराने, उनकी नैतिक चेतना को जगाने और जीवन उद्देश्य मन में बिठा देने की ज़रूरत है ताकि इस्लाम को वे जीवन-व्यवस्था के रूप में अपना सकें और जीवन के हर भाग में उसका ठीक-ठीक पालन कर सकें। पर इसी के साथ इस

बात की ज़रूरत से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि समाज की वर्तमान स्थिति को देखते हुए इस बात का सर्वेक्षण किया जाए कि शरई क़ानूनों को कहां तक सही ढंग से लागू किया जा रहा है, और मुख्य रूप से औरतों को जिस स्थिति का सामना करना पड़ रहा है, उसे सामने रखते हुए तलाक़, ख़ुलअ, आदि समस्याओं पर विचार किया जाए और ऐसे उपायों पर विचार किया जाए जिससे उनकी कठिनाइयां दूर हो सकें। अगर परिस्थितियों को सामने रखकर शरीअत की आत्मा के अनुसार क़ुरआन व हदीस की मर्यादाओं के भीतर पेश आने वाली समस्याओं का हल खोज निकाला जाता है और उसी के अनुसार विधान बना दिए जाते हैं तो निश्चय ही इस्लाम में इसकी गुंजाइश है, पर यह काम हर किसी के करने का नहीं है और न उन लोगों के करने का है जो नई सभ्यता से प्रभावित हैं और जिनके बल पर राजनीतिक मसलहतें छायी हुई हैं। ऐसे लोग अगर संशोधन करने के लिए बैठ गए तो शरीअत का हुलिया ही बिगाड़ कर रख देंगे, बल्कि यह काम उन लोगों के करने का है जो धर्म का व्यापक ज्ञान और उसमें गहरी सूझ-बूझ रखते हों, सदाचार व संयम का जीवन बिताते हों और वर्तमान स्थितियों पर भी निगाह रखते हों। अल्लाह की मेहरबानी से ऐसे लोग इसकी ओर ध्यान दे रहे हैं और सामूहिक रूप से इन लाइनों पर सोच-विचार का काम शुरू हो गया है। उम्मीद है कि इस ओर पेश आने वाली समस्याओं के हल की सही सूरतें और उचित उपाय सामने आ सकेंगे।